अंक : 2, जून 2017

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2017, अंक 2

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित की जा रही है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर-273001
फोन : +91-551-2230004
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085 , भारत
फोन : + 91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स : +91-080-26699410
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाइट देखें www.geagindia.org

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें www.misereor.de; www.misereor.org

सहभागी ज्ञान निर्माण

वरा प्रसाद चित्तेम

स्थाई खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थानीय प्रासंगिक जानकारियों को प्रमुख धारा में लाने के प्रयासों के तहत् किये जा रहे नवोन्वषों के अन्तर्गत डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी द्वारा जमीनी स्तर पर काम करने वाले लोगों का क्षमता निर्माण किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में, एक तरफ जहां नयी–नयी जानकारियां प्राप्त कर साझा की जा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ स्थानीय अभ्यासों के वैज्ञानिक आधारों को भी खोजा एवं साझा किया जा रहा है।

कृषि– पारिस्थितिकी का विस्तार

मंजूनाथ होलालू

दलहनी फसलों से होने वाले प्रभावों को देखते हुए कर्नाटक राज्य के किसान ए एन अन्जनेया ने इसे अपनाया और बेहतर परिणाम प्राप्त किया तथा उनके इस प्रयास को सरकारी तौर पर भी मान्यता मिली।

एकनिष्ठ लक्ष्य : कृषि पारिस्थितिकी को विस्तार देता एक किसान शिक्षक

टी.एम. राधा

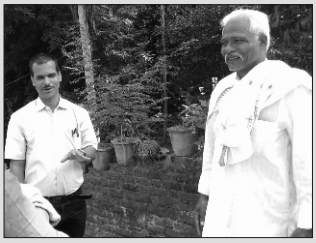

कृषि पारिस्थितिकी से सम्बन्धित जानकारी खेत पर काम करते–करते आती है और किसान इस जानकारी को बढ़ाने के साथ ही दूसरों तक पहुँचाने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यहाँ पर ऐसे ही एक किसान शिक्षक श्री प्रदीप कुमार के बारे में चर्चा की जा रही है, जिन्होंने स्थानीय स्तर पर तैयार किसान मंच के माध्यम से किसानों को कृषि पारिस्थितिकी को अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया है।

जलवायु स्मार्ट फसलें

अभिजीत मोहन्ती एवं सुमानी जोदिया

विशेषकर आपदा की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में कन्द, दलहन एवं मोटे अनाज काफी महत्व रखते हैं। ये फसलें न केवल उपयोग की जाती है, वरन् इन पर शोध भी बहुत कम हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में अम्मा संगठन ने 1200 पारम्परिक महिलाओं को एकत्र कर एक महिला संघ का गठन किया और अपने स्तर पर व्यापक अभियान चलाकर उड़ीसा के 2 विकास खण्डों में इन फसलों को पुनः जीवित करने का प्रयास किया।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2017

5 **सहभागी ज्ञान निर्माण**
वरा प्रसाद चित्तेम

8 **कृषि–पारिस्थितिकी का विस्तार**
मंजूनाथ होलालू

9 **एकनिष्ठ लक्ष्य : कृषि पारिस्थितिकी को विस्तार देता एक किसान शिक्षक**
टी.एम. राधा

12 **जलवायु स्मार्ट फसलें**
अभिजीत मोहन्ती एवं सुमानी जोदिया

17 **छत की दीवारों पर रतालू की खेती**
भावना घिमिरे, राजीव ढाकाल, रोशन पुदासैनी, रचना देवकोटा एवं पशुपति चौधरी

20 **जल–जमाव क्षेत्र में उच्च लो टनल पाली हाउस में नर्सरी से आय अर्जन**
अजय कुमार सिंह

छत की दीवारों पर रतालू की खेती

भावना घिमिरे, राजीव ढाकाल, रोशन पुदासैनी, रचना देवकोटा एवं पशुपति चौधरी

अपनी बहुत सी पौष्टिक खूबियों के बावजूद रतालू अभी भी उपेक्षित एवं अप्रयुक्त है। रतालू पर राष्ट्रीय शोध एवं प्रसार कार्यक्रमों की अनुपस्थिति में, लाईबर्ड ने नेपाल में चेपांग समुदायों के साथ छत की दीवारों पर रतालू की खेती को प्रोत्साहित करने की अनूठी पहल की है।

यह अंक...

कम बाहरी लागत एवं स्थाई कृषि तकनीकों को बढ़ावा देने के उद्देश्यों सहित लीज़ा इण्डिया जून, 2017 का अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। जलवायु परिवर्तन एवं उससे उत्पन्न चुनौतियों के कारण खेती में बढ़ता अस्थाईत्व, खेती के लिए घटती जमीन और खाद्य उत्पादों की बढ़ती मांग ये सभी स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर तक की चुनौतियां हैं, जिनसे निपटने हेतु प्रत्येक स्तर पर अपने–अपने तईं प्रयास किया जा रहा है। ऐसे ही प्रयासों में खेती में पारम्परिक फसलों व प्रजातियों तथा उनके उप उत्पादों को बढ़ावा देना है।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित लीज़ा पत्रिका के इस अंक का पहला लेख डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी, तेलंगाना के श्री वरा प्रसाद चित्तम द्वारा लिखित लेख ''सहभागी ज्ञान निर्माण'' है। इस लेख में मुख्यतः स्थानीय पारम्परिक व प्रासंगिक जानकारियों व उनके वैज्ञानिक आधारों को एकत्र कर दस्तावेजीकरण करते हुए बड़े पैमाने पर प्रचार–प्रसार की गतिविधियों को दर्शाया गया है। इसी प्रकार श्री मंजूनाथ होलालू द्वारा लिखित ''कृषि–पारिस्थितिकी का विस्तार'' नामक दूसरे लेख में एक किसान द्वारा दलहनी फसलों के खेती के फायदे एवं अन्य किसानों की बढ़ती रूचि को देखते हुए कृषि विभाग द्वारा किये जाने वाले सहयोग की कहानी प्रस्तुत है।

सुश्री टी एम राधा द्वारा लिखित पत्रिका का तीसरा लेख ''एकनिष्ठ लक्ष्य : कृषि पारिस्थितिकी को विस्तार देता एक किसा शिक्षक'' उड़ीसा के एक माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य व किसान की कहानी है, जिन्होंने कृषि पारिस्थितिकी को विस्तार देने के लिए एक तरफ तो गांव स्तर पर किसानों को संगठित किया, तो वहीं दूसरी तरफ स्कूली बच्चों के माध्यम से गृहवाटिका तैयार करने की प्रक्रिया शुरू की। बच्चों के साथ की गयी इस गतिविधि से जहां बच्चों का स्कूल से पलायन रूका, वहीं स्वयं द्वारा उगाये गये सब्ज़ियों से बच्चों को पोषक तत्व भी मिलने लगा। श्री अभिजीत मोहन्ती व श्रह सुमानी जोदिया द्वारा लिखित चौथे लेख ''जलवायु स्मार्ट फसलें'' में उन फसलों/प्रजातियों के उन्नयन व विस्तार की बात कही गयी है, जो जलवायु परिवर्तन के इस दौर में विविध प्रकार की मौसमी परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम हैं।

लगातार घटती जमीनें एवं पहाड़ी क्षेत्रों में जमीनों के छोटे–छोटे टुकड़ों पर खेती न कर पाने के कारण किसानों का खेती से मोह भंग होता जा रहा है और वे खेती से भाग रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में सुश्री भावना घिमिरे, श्री राजीव ढाकाल, श्री रोशन पुदासैनी, सुश्री रचना देवकोटा तथा श्री पशुपति चौधरी द्वारा लिखित लेख ''छत की दीवारों पर रतालू की खेती'' एक सम–सामयिक व प्रासंगिक लेख है। जिसमें भूमि के प्रत्येक इंच का सही उपयोग करने की कला बताई गयी है। जबकि श्री अजय कुमार सिंह द्वारा लिखित पत्रिका का आखिरी लेख एक ऐसे किसान की कहानी है, जिसने उच्च टनल पाली हाउस के माध्यम से अपनी आजीविका को सुदृढ़ करने का प्रयास किया है।

अन्त में पत्रिका के सभी लेखों एवं उनकी उपयोगिता पर आपके विचारों एवं सुझावों की आशा में ...

• **सम्पादक मण्डल**

सहभागी ज्ञान निर्माण

वरा प्रसाद चित्तेम

स्थाई खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थानीय प्रासंगिक जानकारियों को प्रमुख धारा में लाने के प्रयासों के तहत् किये जा रहे नवोन्वषों के अन्तर्गत डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी द्वारा जमीनी स्तर पर काम करने वाले लोगों का क्षमता निर्माण किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में, एक तरफ जहां नयी–नयी जानकारियां प्राप्त कर साझा की जा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ स्थानीय अभ्यासों के वैज्ञानिक आधारों को भी खोजा एवं साझा किया जा रहा है।

पर्यावरण अनुकूल खेती पद्धतियों की ओर रूचि, जैव विविधता आधारित जैविक खेती तथा कम बाहरी लागत की स्थाई खेती, इन सभी ने मिलकर पारम्परिक जानकारियों को स्थाई कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन तैयार किया है। विकास के मुद्दे पर काम करने वाले लोगों तथा कृषि वैज्ञानिकों के अन्दर इन स्थानीय परम्पराओं को निकट से जानने समझने की उत्सुकता उत्पन्न होने लगी है और वे इन संगठनों तथा तकनीकों की मजबूती पर आधारित एक नया माडल तैयार करने की दिशा में उत्सुक होने लगे हैं। आज, इस वैश्विक घटना में स्थानीय ज्ञान प्रणालियों के विशाल भण्डार का खुलासा हुआ है।

तेलंगाना के मेडक जिले की गरीब दलित महिला किसानों के साथ पिछले दो दशकों से काम कर रही डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी का मुख्य उद्देश्य स्थाई खेती के माध्यम से इन दलित महिला किसानों के अन्दर सम्मानपूर्ण जीवन जीने की क्षमता विकसित करना है। डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी ने एक तरफ तो इन महिलाओं को अपनी परम्परागत जानकारियों को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करना शुरू किया तो दूसरी तरफ प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण के माध्यम से इन अमूल्य स्थानीय परम्परागत जानकारियों का बड़े पैमाने पर अनुकूलन, प्रदर्शन एवं प्रचार–प्रसार करने के लिए इनका दस्तावेजीकरण करना भी प्रारम्भ कर दिया।

बीज संरक्षण की पारम्पकि पद्धति को प्रदर्शित करती अंजम्मा

फोटो : लेखक

स्थानीय पारम्परिक ज्ञान को पहचानना

अनुभवी किसानों से प्राप्त पारम्परिक ज्ञान को दूसरे लोगों से साझा करने हेतु जैविक विधि से खेती के स्थानीय पारम्परिक ज्ञान पर महिला एवं पुरूष किसानों के साथ साक्षात्कार किया गया तथा इस क्षेत्र में स्थानीय ज्ञान के साथ–साथ वैज्ञानिक जानकारियों को भी अपनाया गया। डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी ने बहुत सी महिलाओं जैसे बिदाकन्ने की समम्मा, गंगवार की अंजम्मा तथा हुमनपुर की लक्षम्मा को चिन्हित कर, उनका दस्तावेजीकरण किया गया तथा वैज्ञानिक जानकारियों से समृद्ध किया गया।

बिदाकन्ने गांव की एक दलित महिला समम्मा के पास पर्यावरण अनुकूल कृषिगत गतिविधियां एवं जलवायु संवेदी फसलों की बुवाई से सम्बन्धित परम्परागत जानकारियों का एक भण्डार ही है। लक्षम्मा हुमनपुर की एक किसान हैं, जिनके पास पांच एकड़ जमीन है। साथ ही इन्होंने मिट्टी के बर्तनों में 60 से 70 प्रकार की देशी प्रजातियों के बीज एकत्र कर रखे हैं। न्यालकल मंडल के गंगवार की अंजम्मा बीज भण्डारण की पारम्परिक पद्धतियों के विषय में अच्छी जानकारी रखती हैं।

किसानों से प्राप्त पारम्परिक ज्ञान की जांच वैज्ञानिक आधार पर करने के बाद ही उसको दस्तावेजित कर प्रसारित किया जाता है।

क्षमता निर्माण

कृषि से जुड़ी जानकारियों एवं कृषिगत तकनीकों को खेतिहर समुदायों तक पहुँचाने में जमीन स्तर पर काम करने वाले प्रसार कार्यकर्त्ताओं की मुख्य भूमिका रहती है। लेकिन जब बात पर्यावरण अनुकूल खेती गतिविधियों की आती है तो अनुभव यह बताते हैं कि एक किसान अपने पारम्परिक ज्ञान के बारे में स्वयं बहुत अच्छी तरह से जानता है और उसे अपनाते हुए अपनी आजीविका को उन्नत बना सकता है, परन्तु इसके लिए कुछ तकनीकों को अपनाने हेतु उन्हें उत्प्रेरित करने की आवश्यकता होती है। इस परिदृश्य में, जमीन से जुड़े इन प्रसार कार्यकर्त्ताओं को तैयार करने हेतु सिर्फ मंच एवं संसाधनों की आवश्यकता होती है ताकि वे किसानों के बीच जानकारियां / सूचनाएं साझा करने की एक कड़ी के रूप में स्वयं को तैयार कर सकें।

> अनुभव यह बताते हैं कि किसानों के पास अच्छे पारम्परिक ज्ञान बहुत अधिक मात्रा में होते हैं, जिनका उपयोग कर वह अपनी आजीविका उन्नत बना सकते हैं।

बीज भण्डारण पद्धति

गंगवार की सुश्री अंजम्मा के पास चना, गेंहू या मटर के बीजों को भण्डारित करने का अपना एक तरीका है। सबसे पहले वह मिट्टी में गाय का गोबर मिलाकर उससे बेंत की टोकरी को लीप देती हैं। उसके बाद चने के छिलकों को टोकरी में चारों तरफ नीचे से लेकर ऊपर तक बिछा देती हैं और बीच में मुख्य बीज को रखती हैं। तत्पश्चात् सबसे ऊपर नीम की पत्तियों को बिछाकर उसे गाय के गोबर, गीली मिट्टी और राख के मिश्रण से बन्द कर देती हैं। यह प्रक्रिया कटाई के बाद बीजों के होने वाले नुकसान व क्षति को रोकती है।

सामान्यतः थ्रेशिंग के बाद चने के छिलकों को फेंक दिया जाता हैं, लेकिन इस केस में वे बीज भण्डारण के लिए इसे एक संरक्षक माध्यम के रूप में उपयोग करती हैं। चने के छिलकों में मैलिक एसिड होने की वजह से ये भण्डारण के कीटों में जलन उत्पन्न करते हैं और इस कारण कीट भण्डारित सामग्री से दूर रहते हैं। किसानों के साथ परम्परागत ज्ञान को साझा करते समय इसी तरह की वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा पारम्परिक ज्ञान की उपयुक्तता को बताया जाता है।

किसानों के बीच खेती के कृषि पारिस्थितिकी तरीके पर जानकारी आदान–प्रदान करने के ऊपर जमीन स्तर से जुड़े कार्यकर्त्ताओं का ज्ञानवर्धन करने के उद्देश्य से तेलंगाना राज्य में नवम्बर, 2015 में तीन दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। मेडक जिला के सभी 46 मण्डलों के कृषिगत प्रसार कार्यकर्त्ताओं के लिए 7 बैचों में डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र, ज़ाहिराबाद, मेडक में इस कार्यशाला का आयोजन किया गया। साथ ही आत्मा स्टाफ, इन्दिरा क्रान्ति पाथम समन्वयक एवं जिले में किसानों के साथ प्रत्यक्ष तौर पर काम करने वाली स्वैच्छिक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं को भी इस कार्यशाला में शामिल किया गया। इस पहल को मेडक जिला के कृषि तकनीक प्रबन्धन अभिकरण द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की गयी।

कार्यशाला के दौरान नवीनतम ज्ञान एवं सूचनाओं से परिचित कराने हेतु सहभागी तकनीक का उपयोग किया गया। उदाहरण के लिए, आर्थिक दृष्टि से कम लागत वाली तथा स्थानीय स्तर पर उपलब्ध तथा कुछ निश्चित मानकों पर आधारित सर्वाधिक उचित जैविक खाद को चिन्हित करने के लिए सहभागी उपकरणों का प्रयोग किया गया। इसके अन्तर्गत प्रतिभागियों से कहा गया कि वे विभिन्न प्रकार की खादों को श्रेणी प्रदान करें । इस

अभ्यास से यह प्रदर्शित हुआ कि गाँव में आसानी से उपलब्ध खेत के अपशिष्ट पदार्थों से तैयार खाद मृदा स्वास्थ्य के लिए अच्छे तो होते हैं, लेकिन पौधों को समुचित पोषण नहीं दे पाते हैं, इसके लिए प्रतिभागियों ने 41 अंक दिये।

स्थानीय स्तर पर तैयार तरल जैव उर्वरक जैसे वर्मीवाश, पंचगव्य, जीवामृतम आदि को उनकी बहु उपयोगिता के कारण सबसे अधिक 91 अंक मिला। सबसे रूचिकर तो यह रहा कि अकार्बनिक उर्वरक, जो पौधों को बड़ी मात्रा में पोषण उपलब्ध कराते हैं, उनको सबसे कम 19 नम्बर मिला। कम अंक मिलने के पीछे अकार्बनिक उर्वरकों की लागत अधिक होना, स्थानीय स्तर पर उपलब्धता न मिलना, पर्यावरण अनुकूलन न होना तथा मृदा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होना आदि कुछ प्रमुख कारण रहे।

आज 12 डिवीजनों तथा 46 मण्डलों से कुल 205 प्रसार कार्यकर्त्ताओं को स्थानीय जैविक खेती पद्धतियों पर प्रशिक्षित किया जा चुका है, जिसमें जिले के उच्च स्तर के कृषि प्रसार कार्यकर्त्ताओं के साथ–साथ जमीनी स्तर के प्रसार कार्यकर्त्ता भी शामिल हैं।

ज्ञान का विस्तार

इन प्रशिक्षित प्रसार कार्यकर्त्ताओं ने जिले के किसानों के बीच जैविक खेती से सम्बन्धित परम्परागत ज्ञान का प्रसार करने में सक्रिय भागीदारी निभाई है। साझा की गयी जैविक तकनीकों में, वर्मीवाश एक ऐसी तकनीक है, जिसने किसानों का ध्यान पूरी तरह से अपनी ओर आकर्षित किया है।

जिले में कृषि प्रसार कार्यकर्त्ताओं के ज्ञान को मजबूती प्रदान करने के लिए किये जा रहे इस पहल ने जैव विविधता आधारित जैविक कृषि के लिए केन्द्रीय ज्ञान हब के रूप में एक संस्था को तैयार किया है। इसने अन्य जिलों के किसानों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया है।

■

वरा प्रसाद चित्तेम
वैज्ञानिक- कृषिगत प्रसार
डक्कन डेवलपमेण्ट सोसायटी कृषि विज्ञान केन्द्र
जाहिराबाद, मेडक, तेलंगाना
ईमेल : varachittem@gmail.com

Co-creation of knowledge
LEISA INDIA, Vol 18, No.1, March 2016

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2000-2016

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 - Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V.18, No.1, 2016- Co-creation of knowledge
V.18, No.2, 2016-Valuing underutilised crops
V.18, No.3, 2016-Agroecology-Measurable and sustainable
V.18, No.4, 2016-Stakeholders in agroecology

कृषि- पारिस्थितिकी का विस्तार

मंजूनाथ होलालू

दलहनी फसलों से होने वाले प्रभावों को देखते हुए कर्नाटक राज्य के किसान ए एन अन्जनेया ने इसे अपनाया और बेहतर परिणाम प्राप्त किया तथा उनके इस प्रयास को सरकारी तौर पर भी मान्यता मिली।

श्री ए.एन. अन्जनेया कर्नाटक राज्य के दावानागेरे जिले के हरिहरा तालुक में अवस्थित कुम्बालूरू गांव के एक युवा किसान हैं। 15 वर्ष पहले कृषि रसायनों के दुष्प्रभाव से बीमार होकर अस्पताल में भर्ती होने के दौरान इलाज कर रहे डाक्टरों की सलाह पर इन्होंने जैविक विधि से खेती करनी प्रारम्भ की। जबकि इससे पहले वे परम्परागत तरीके से खेती करते थे और अपनी धान की फसलों पर रसायनों एवं कीटनाशकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करते थे।

अन्जनेया को दलहनी संस्कृति (मुख्य फसल की बुवाई से पहले खेत को हरित खाद की फसलों को शामिल करना) अपनाने की प्रेरणा पड़ोसी जिले के शिकारपुरा के एक किसान श्री बी.एन. नन्दीश से मिली। संयोग से, लीज़ा इण्डिया में दलहनी संस्कृति के अनुभवों के ऊपर श्री नन्दीश का लेख पहले छप भी चुका था। अन्जनेया ने दलहनी खेती के ऊपर और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न संस्थानों जैसे एस.के.डी.आर.डी.पी. तथा सहज आदि से सम्पर्क किया। आज अन्जनेया की सफलता को देखते हुए बहुत से किसान अन्जनेया से तकनीकी सहयोग लेकर इस खेती को अपना रहे हैं। किसानों में इस बढ़ती रूचि को देखते हुए वर्ष 2009 में कृषि विभाग ने क्षेत्र में इस अभ्यास का विस्तार बड़े पैमाने पर करने के उद्देश्य से कृषि–

अपने खेत में अन्जनेया

फोटो : लेखक

पारिस्थितिकी खेती, विशेषकर पारम्परिक धान की प्रजातियों पर काम करने वाली स्थानीय पंजीकृत जैविक किसान समूह सारना मुद्न्ना सव्यावा क्रुषिकरा बलागा के सहयोग से रसायन मुक्त खेती, उत्पादों का प्रसंस्करण तथा सामूहिक विपणन को प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया। बलागा में वर्तमान में कुम्बालुर गाँव के 300 किसान जुड़े हैं।

वर्ष 2009 में, कृषि विभाग से सहयोग पाकर किसान समूह ने दलहनी संस्कृति को बड़ा विस्तार दिया। समूह के सदस्यों ने हरित खाद के लिए मुख्य तौर पर सूरजमुखी, केवांच, ढैंचा आदि का उपयोग किया। अन्जनेया ने भी अपनी धान की खेती वाले क्षेत्र के खारे प्रभाव वाले 4 एकड़ क्षेत्र में दलहनी फसलों की बुवाई की। वर्ष दर वर्ष दलहनी खेती का क्षेत्रफल बढ़ता ही जा रहा है जिसे तालिका के माध्यम से निम्नवत् देख सकते हैं –

वर्ष	दलहनी खेती का फसल
2010	40 एकड़
2011	150 एकड़
2012	400 एकड़
2013	600 एकड़
2014	1200 एकड़

अब, गाँव के धान उगाने वाले किसान आने वाले वर्षों में 12000 एकड़ की मांग कर रहे हैं। इस अभ्यास से उत्पादन की लागत में 20 प्रतिशत की कमी आयी है और मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ने से भूमि की उर्वरता बढ़ी है। अब फसलों पर कीटों एवं व्याधियों का प्रकोप घटा है। किसानों ने अब रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग लगभग बन्द कर दिया है। अन्जनेया एवं उसके दल के सदस्य कहते हैं कि ''सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पिछले पाँच वर्षों में हमारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा हुआ है।'' इन सभी प्रयासों के लिए, अन्जनेया को राज्य सरकार की तरफ से ''क्रुषि पंडित'' की उपाधि मिली है और नागर समाज संगठनों की तरफ से बहुत से अन्य पुरस्कार भी मिले हैं।

■

मंजूनाथ होलालू
जैविक खेती पर सलाहकार द्वारा रजाकी बिल्डिंग, विनायक नगर
सवानुर, सिग्गांव- 581205 हवेरी, कर्नाटका
ईमेल : manjubaduku@gmail.com

Agroecology- Measurable and sustainable
LEISA INDIA, Vol 18, No.3, September 2016

एकनिष्ठ लक्ष्य

कृषि पारिस्थितिकी को विस्तार देता एक किसान शिक्षक

टी०एम० राधा

कृषि पारिस्थितिकी से सम्बन्धित जानकारी खेत पर काम करते-करते आती है और किसान इस जानकारी को बढ़ाने के साथ ही दूसरों तक पहुँचाने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यहाँ पर ऐसे ही एक किसान शिक्षक श्री प्रदीप कुमार के बारे में चर्चा की जा रही है, जिन्होंने स्थानीय स्तर पर तैयार किसान मंच के माध्यम से किसानों को कृषि पारिस्थितिकी को अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया है।

प्रदीप कुमार उड़ीसा के गन्जम जिले के विकास खण्ड दिगापहण्डी के एक छोटे से गांव गुहालपुर में स्थित माध्यमिक विद्यालय में पिछले 16 वर्षों से प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। प्रदीप कुमार बिहमापुर गांव के एक किसान परिवार से सम्बन्ध रखते हैं और इन्होंने ग्राम विकास नामक एक स्वैच्छिक संगठन में विकास कार्यकर्त्ता के रूप में अपने कैरियर की शुरूआत की। प्रदीप छात्र जीवन से ही किसानों के बीच में रहकर खेती पद्धतियों के प्रति उनके विचारों में बदलाव लाने एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल खेती करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

एक कृषि पारिस्थितिकी अभ्यास के तौर पर श्री पद्धति का विस्तार

ग्राम विकास के साथ जुड़ाव के दौरान चावल की खेती करने वाले किसानों के साथ सघन रूप से काम करते हुए प्रदीप कुमार जानते थे कि सिंचाई के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला पानी खारा होने के कारण किसानों को बहुत सी समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। वर्ष 2000 में उन्होंने लीज़ा इण्डिया के दिसम्बर अंक में प्रकाशित डॉ0 नोरमन अपहाफ के लेख के बारे में पढ़ा। यह विचार उन्हें काफी उत्साहित कर रहा था, जिसके बारे में उन्होंने गुहालपुर के सहयोगी किसानों से बात की और श्री विधि को खेत में अपनाने का निश्चय किया। दो किसानों ने इस विचार को सुनकर श्री पद्धति को अपनाया और उन्हें बेहतर परिणाम भी प्राप्त हुए।

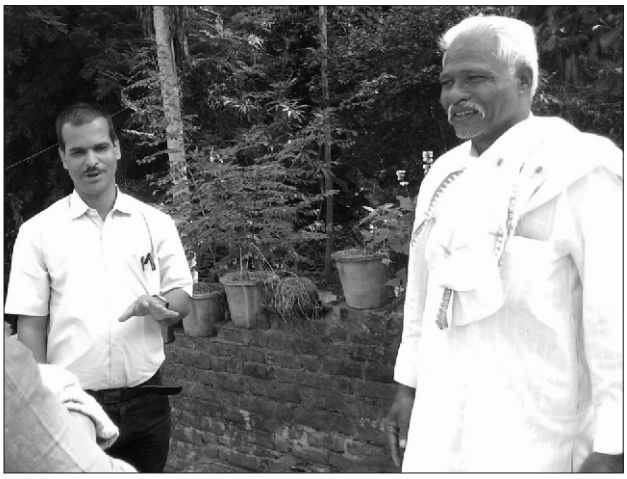

फोटो : लेखक

जल आधारित मुद्दों के समाधान हेतु एक साथ काम करते हुए प्रदीप एवं पानी पंचायत सदस्य

वर्ष 2000–01 में घोदोहदा डैम से धान की खेती करने वाले किसानों के बीच सिंचाई हेतु पानी का समान वितरण करने के लिए प्रदीप ने किसानों को जल समूह के नाम से संगठित कर पानी पंचायत बुलाई। दिगापहण्डी विकास खण्ड के 57 गाँवों के दो–दो प्रतिनिधि इस समूह में शामिल थे। यह समूह प्रतिमाह एक बार मिलता था और खेती से जुड़े मुद्दों के साथ ही ग्राम विकास से सम्बन्धित अन्य मुद्दों पर भी चर्चा की जाती थी। इस बैठक के दौरान ही गांव स्तर के बहुत से विवादों का निपटारा भी हो जाता था। एक किसान के रूप में, प्रदीप भी इस समूह का हिस्सा थे और समूह में प्रभावकारी भूमिका निभाते थे। चूंकि वह एक शिक्षित व्यक्ति और शिक्षक भी हैं, इसलिए गांव में स्थानीय समुदाय उन्हें सम्मान की नजर से देखता है।

इसी प्रकार की एक बैठक में प्रदीप ने समुदाय के साथ श्री विधि पर जानकारी साझा की और बताया कि इस पद्धति को अपनाने से संसाधनों का खर्च कम होगा व उपज भी बेहतर होगी। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि जल प्रयोग समूह पानी का प्रयोग बहुत सोच–समझकर करता है और इस विधि में पानी की जरूरत बहुत ही कम होगी। इस प्रकार उन्होंने किसानों को श्री पद्धति अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया। प्रारम्भ में लगभग 200 किसानों ने इस पद्धति से खेती की। वर्ष 2003 में पूरे विकासखण्ड से लगभग 1000 किसानों ने अपने खेत में श्री पद्धति को अपनाना शुरू किया।

वर्ष 2005 तक श्री पद्धति को बढ़ावा देना राज्य सरकार की कार्यसूची में शामिल नहीं था। एल.आई.पी.आई.सी.ए. तथा ग्राम विकास जैसी कुछ स्थानीय संस्थाएं किसानों को श्री पद्धति अपनाने हेतु प्रोत्साहित कर रही थीं। प्रदीप ने भी अपने विद्यालय में दो बार बैठक की एवं कटक स्थित चावल शोध संस्थान से सन्दर्भ व्यक्तियों को बुलाकर चर्चा कराई। फिर भी यह प्रक्रिया लम्बे समय तक नहीं चल सकी।

2005 से वे लगातार इस पद्धति को बढ़ावा देने हेतु प्रयासरत हैं और पानी पंचायत की मासिक व त्रैमासिक बैठकों के दौरान इस पद्धति को अपनाने से मिली सफलता एवं कार्य के दौरान अपने वाली कठिनाईयों पर चर्चा की जाती थी। इस पद्धति के ऊपर जानकारियों तथा क्षमता को और अधिक उन्नत करने हेतु प्रशिक्षण के बिन्दुओं को चिन्हित किया गया, लेकिन दुर्भाग्य से, समुदाय को इसे प्राप्त करने का कोई जरिया नहीं मिल रहा था।

वर्तमान में श्री पद्धति को विभाग द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है और अब यह राज्य स्तर पर की जाने वाली पहल है। लेकिन राज्य स्तर पर बढ़ावा देने से बहुत पहले से ही प्रदीप दिगापहण्डी विकासखण्ड में श्री पद्धति अपनाने हेतु किसानों को उत्प्रेरित करने में मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। प्रदीप ने यह महसूस किया कि श्री पद्धति के ऊपर सरकार द्वारा चलाये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम पर्याप्त नहीं थे। कार्यक्रम बहुत धीमी गति से चलते थे, जिससे किसानों द्वारा इस पद्धति को अपनाये जाने की गति भी बहुत धीमी हो गयी। कई बार प्रदर्शन भ्रमण पर जाने के बाद किसानों ने इसे अपनाना प्रारम्भ किया। प्रदीप ने लगभग 20 गांवों में श्री पद्धति से काम करने वाले किसानों के साथ बात–चीत की। जिस दौरान किसानों ने बताया कि इस विधि से खेती करने में उपज की वृद्धि हो रही है। उनका कहना था कि पहले जिस खेत से उन्हें 15–16 कुन्तल प्रति एकड़ की उपज मिलती थी, अब उन्हें उसी खेत से 20–25 कुन्तल प्रति एकड़ की उपज प्राप्त हो रही है। किसान यह मान रहे हैं कि यह पद्धति नवीन एवं संसाधन बचाने वाली है, परन्तु वे अभी भी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि इसे बड़े पैमाने पर कैसे लागू किया जाये?

युवा किसानों को कृषि पारिस्थितिकी की तरफ मोड़ना

प्रदीप ने अपने विद्यालय में गृहवाटिका तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गृहवाटिका की शुरूआत पर्यावरण के ऊपर सीखने के दौरान एक क्रियात्मक गतिविधि के रूप में की गयी थी। चूंकि विद्यालय में पढ़ने वाले अधिकांश छात्र गरीब खेतिहर परिवारों से आते हैं, इसलिए बागवानी के प्रति बच्चों की स्वाभाविक रूचि है।

कृषि पारिस्थितिकी पद्धति से गृहवाटिका व्यवस्थित करते विद्यालय के बच्चे

लगभग 200 वर्ग मीटर में गृहवाटिका तैयार की गयी और उसमें बहुत सी सब्ज़ियां जैसे बैगन, सहजन, मिर्चा, साग, पपीता आदि उगाया गया।

पर्यावरणसम्मत खेती पर जागरूकता फैलाने के साथ ही प्रदीप ने इन सब्ज़ियों की खेती जैविक विधि से करने को प्रोत्साहित किया। इस हेतु उन्होंने बगीचे में एक गढ्ढा तैयार कर उसमें बगीचे से निकले अपशिष्टों का उपयोग कर खाद तैयार किया। खाद बनाने के लिए गाय का गोबर, नीम व देवदार की पत्तियां आदि का उपयोग किया। यद्यपि कि उन्होंने एक पत्रिका में पढ़कर वर्मी कम्पोस्ट भी तैयार करने की कोशिश की, परन्तु सफलता नहीं मिल सकी।

प्रारम्भ में, गृहवाटिका के पौधे सफेद चींटियों से प्रभावित थे और उनमें कभी–कभी कुछ बीमारियों का भी प्रकोप हो जाता था। उसका समाधान करने के बारे में पूछने पर श्री

> **छात्र पहली पीढ़ी हैं, जो साक्षर हैं। गृहवाटिका पर व्यवहारिक प्रशिक्षण न केवल उनको प्रसन्नता प्रदान करता है, वरन् उन्हें पर्यावरणसम्मत गतिविधियों के प्रति जागरूक बनाते हुए विश्वासी भी बनाता है।**

प्रदीप कहते हैं– ''श्री नारायण रेड्डी के लेख को पढ़ने से इन समस्याओं से निपटने में बहुत सहायता मिली।'' आगे वे कहते हैं, हरी खाद को पुनः संरक्षित करने तथा निरन्तर देख–भाल व निरीक्षण करते रहने से बहुत सी समस्याओं से निपटने में सहायता मिली। नारायण रेड्डी के अनुभवों के आधार पर इन्होंने गेंदे के फूल के पौधों को लगाने के लिए छायादार मिट्टी को भी प्रयुक्त किया।

प्रत्येक शनिवार को बच्चों के लिए एक घण्टे के विशिष्ट कक्षा का संचालन कर गृहवाटिका से जुड़े अनुभवों को साझा किया जाता है। छात्र इको क्लब के माध्यम से एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं जहां पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा की जाती है। बच्चे यह भी बताते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और गृहवाटिका को व्यवस्थित रखने में उन्हें किस तरह की कठिनाई आ रही है? शिक्षक उन्हें आवश्यक फालोअप कार्यवाही करने हेतु सलाह देते हैं।

गृहवाटिका से निकली सब्ज़ियों का उपयोग छात्रों के लिए बनने वाले मिड–डे मील में किया जाता है। छात्र यह महसूस करते हैं कि बाजार से खरीद कर लाई गयी सब्ज़ियों की अपेक्षा उनकी गृहवाटिका में तैयार सब्ज़ियों का स्वाद काफी अच्छा है। बच्चे घर वापस जाकर इन बातों के ऊपर चर्चा करते हैं। प्रदीप महसूस करते हैं कि ''करके ही विश्वास होता है।'' और ये छात्र पहली पीढ़ी हैं, जो साक्षर हैं। गृहवाटिका और खाद बनाने पर व्यवहारिक प्रशिक्षण न केवल उनको प्रसन्नता देता है, वरन् यह उन्हें स्वतन्त्र रूप से सोचने के लिए अवसर देता है और पर्यावरणसम्मत गतिविधियों के प्रति जागरूक बनाते हुए विश्वास भी दिलाता है। इस आनन्दपूर्ण सीखने की प्रक्रिया से बच्चों का लगातार स्कूल आना और पढ़ना सुनिश्चित हुआ है। प्रदीप कहते हैं ''अब स्कूल से कोई भी बच्चा भाग नहीं रहा है। सभी लगातार पढ़ने आते हैं।''

प्रभाव–क्षेत्र

प्रदीप पानी पंचायत के माध्यम से खेतिहर समुदायों के साथ सीधा संवाद बनाये हुए हैं। विद्यालय के बच्चों एवं उनके अभिभावकों के साथ ही उन्होंने गांव स्तरीय कार्यकर्त्ताओं तथा विकासखण्ड स्तरीय अधिकारियों के साथ भी मजबूत सम्बन्ध स्थापित किये हैं। वर्तमान में, विकासखण्ड स्तर की सभी विकासात्मक गतिविधियों के लिए प्रदीप ही संपर्क व्यक्ति हैं। प्रदीप अपने विचारों से समाज के बहुत से लोगों को प्रभावित करने में सक्षम हैं। शुरूआत में इनके विद्यालय के बच्चे इनके विचारों से प्रभावित हुए। अब तो इनके साथ पढ़ाने वाले शिक्षक तथा सेवानिवृत्त शिक्षक भी इनसे अच्छे खासे प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए, बेरहमपुर ग्राम पंचायत में सामा सिंही के निवासी श्री काली मिश्रा इस स्कूल में एक शिक्षक हैं। वे जब वापस घर आते हैं, तो इन विचारों का प्रसार करते हैं। इसी प्रकार उनके घनिश्ठ मित्रगण दो स्वैच्छिक संगठनों में काम करते हैं। बेरहमपुर में एलआईपीआईसीए एवं दिगापहण्डी विकासखण्ड में जन जागरण उनके विचारों को प्रसारित करने का काम कर रहे हैं। असल में वह अलग–अलग दिव्यांग व्यक्तियों द्वारा प्रबन्धित किये गये जन जागरण के कनसारी खेत के लिए सन्दर्भ व्यक्ति हैं। पानी पंचायत के सदस्यों पर उनका सबसे अधिक प्रभाव देखा जा सकता है, जिसमें विकासखण्ड के 57 गांवों के सदस्य जुड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त, वह विकासखण्ड स्तर पर गठित इको–क्लब के माध्यम से छात्रों से भी जुड़े हुए हैं।

प्रदीप का प्रभाव क्षेत्र बहुत बड़ा है। विद्यालय का शिक्षक होने तथा पानी पंचायत का सक्रिय सदस्य होने के नाते उन्हें लोगों से मिलने–जुलने का व्यापक अवसर भी मिलता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि उनके व्यक्तिगत गुणों जैसे काम के प्रति उनके जुनून तथा समर्पण ने बड़ी भूमिका निभाई है। उदाहरणस्वरूप, अपनी शिक्षा एवं क्षमता के कारण प्रदीप गांव के एक मुख्य व्यक्ति के रूप में हैं। विकासात्मक कार्यों को करना उनका जुनून है और उनके पास विकासात्मक संगठनों में काम करने का पहले का अनुभव भी है। नेटवर्किंग की उनकी क्षमता तथा बाहरी दुनिया के साथ उनके सम्पर्क उन्हें गांव में सम्मान का पात्र बनाते हैं। दूसरी तरफ, प्रधानाचार्य होने के कारण युवा पीढ़ी को सही दिशा प्रदान करने का अवसर भी प्राप्त है। उनकी ये सभी खूबियां कृषि पारिस्थितिकी पर सूचनाओं के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

प्रदीप का केस हमें यह बताता है कि यदि व्यक्ति के अन्दर जुनून और समर्पण हो और वह चाहे तो एक व्यक्ति भी समाज में व्यापक बदलाव ला सकता है। इस केस में सूचना के आदान–प्रदान की महत्ता को भी प्रदर्शित किया गया है। यदि लगन व निष्ठा के साथ सही व्यक्ति तक सूचनाओं की पहुंच सुनिश्चित की जाये तो उसके प्रभाव का कोई अन्त नहीं हो सकता। यहां तक कि एक व्यक्ति, एक किसान या एक शिक्षक जिस समाज में रहता है, उसमें बदलाव ला सकता है।

■

टी०एम० राधा
ए.एम.ई. फाउण्डेशन
बंगलौर, भारत
ईमेल : leisaindia.@yahoo.co.in
वेबसाईट : www.amefound.org

Stakeholders in agroecology
LEISA INDIA, Vol 18, No.4, December 2016

विविध प्रकार के मोटे अनाजों को काटती एक महिला

जलवायु स्मार्ट फसलें

अभिजीत मोहन्ती एवं सुमानी जोदिया

विशेषकर आपदा की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में कन्द, दलहन एवं मोटे अनाज काफी महत्व रखते हैं। ये फसलें न केवल उपयोग की जाती है, वरन् इन पर शोध भी बहुत कम हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में अम्मा संगठन ने 1200 पारम्परिक महिलाओं को एकत्र कर एक महिला संघ का गठन किया और अपने स्तर पर व्यापक अभियान चलाकर उड़ीसा के 2 विकास खण्डों में इन फसलों को पुनः जीवित करने का प्रयास किया।

भारत के उड़ीसा राज्य में प्रारम्भ से ही कन्द, दलहन एवं मोटे अनाज आदिवासी समुदायों के भोजन का हिस्सा रहे हैं। ये फसलें खाद्य संकट के दिनों में इन समुदायों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करती थी। लेकिन कृषि का बाजारीकरण होने से एकल खेती का चलन बढ़ा और धान की खेती मुख्य तौर पर होने लगी, जिससे फसल प्रणाली में इन फसलों को उपेक्षित किया जाने लगा। इसके साथ रसायनिक उर्वरकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करने के कारण मृदा का प्राकृतिक उर्वरता घटी, परिणामतः उपज में क्रमशः ह्रास होने लगा। प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति एवं तीव्रता के कारण हाल के वर्षों में उड़ीसा की स्थिति और संवेदनशील हुई और इस प्रकार कुल मिलाकर गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है।

इन विकट स्थितियों में अम्मा संगठन ने 1200 पारम्परिक महिलाओं को मिलाकर एक महिला संघ का गठन किया और कन्द, दलहन एवं मोटे अनाजों को पुनर्जीवित करने हेतु इस संघ के माध्यम से एक व्यापक व जीवन्त अभियान

> महिलाओं की सौदेबाजी एवं मोलभाव करने की क्षमता बढ़ी है और परिवार की आय बढ़ाने में उनके द्वारा किये जाने वाले योगदान को लोग मानने लगे हैं।

कन्द फसलों का पोषण मूल्य

पोषक तत्व	ई०एफ०वाई०	कसावा	गंजी
पोषक तत्व	2.0	2.5	2.2
प्रोटीन (प्रतिशत में)	0.1	0.2	00
वसा (प्रतिशत में)	16.6	32.4	21
ऊर्जा (किकल)	75.0	135	00
विटामिन बी-1 (मिग्रा)	0.6	0.04	00
विटामिन बी-2 (मिग्रा)	0.7	0.05	00
विटामिन सी* (मिग्रा)	0.0	34	00
कैरोटीन (मिग्रा)	26.2	00	00
कैल्शियम (मिग्रा)	12.7	26	30
फास्फोरस (मिग्रा)	67.0	32	49
मैग्नीशियम (मिग्रा)	47.0	00	24
सोडियम (मिग्रा)	4.1	2	13
पोटैशियम (मिग्रा)	622	39.4	373
सल्फर (मिग्रा)	11.8	39.4	29
आयरन (मिग्रा)	0.51	0.9	0.8
कॉपर (मिग्रा)	0.18	00	00
जिंक (मिग्रा)	1.05	00	00
मैग्नीज़ (मिग्रा)	0.31	00	00
बोरान (मिग्रा)	0.7	00	00

* मूल्य का निर्धारण ताजे वजन में मिग्रा0/100 ग्राम किया जाता है।

स्त्रोत : बाल गोपालन एवं अन्य द्वारा सम्पादित ''ट्रापिकल ट्यूटर क्राप्स''

चलाया। रघुराज फाउण्डेशन के सहयोग से इस अभियान को कालाहांडी जिले के थुआमुलरामपुर तथा रायगदा के काशीपुर विकास खण्डों में इस अभियान को चलाया गया।

कन्द वाली फसलें विभिन्न कृषिगत जलवायुविक परिस्थितियों में भी बेहतर उपज देती हैं। ये कन्द वाली फसलें सूखा एवं बाढ़ तथा अत्यधिक गर्मी की स्थितियों में भी उगायी जाती हैं। जबकि सामान्य या अनुकूल स्थितियों में जब अन्य फसलों के नुकसान की संभावना काफी कम होती है तो उस समय ये बहुत अच्छा उत्पादन देती हैं। दूसरी तरफ दलहन और मोटे अनाज जो खाद्य एवं पोषण का एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं, इन्हें उगाने के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है और उपज सुनिश्चित होती है। साथ ही अधिक उत्पादन भी होता है।

कन्द वाली फसलों की खेती को बढ़ावा देना

सूरन उगने के लिए रायगदा एवं कालाहांडी जिले की वर्षा आधारित पहाड़ी क्षेत्र अधिक उपयुक्त हैं। सूरन लगाने से बहुत से लाभ मिलते हैं और यह कई प्रकार की जलवायुविक परिस्थितियों के प्रति सहनशील होता है–

– इसकी खेती करना आसान होता है।
– उच्च उत्पादन क्षमता है।
– कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है।
– बाजार में इसका हमेशा मांग रहती है और बढ़िया मूल्य मिलता है। अम्मा संगठन ने किसानों के साथ कई चरणों में बैठकें कर सूरन के महत्व को उनके साथ साझा किया। प्रक्षेत्र प्रदर्शन का आयोजन किया गया और कन्द वाली फसलों की खेती व कृषि पारिस्थितिकी

गंजी की खेती से प्रसन्नचित सोबिनी मुदुली

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

विभिन्न मोटे अनाजों का पोषण मूल्य

मोटे अनाज	प्रोटीन (ग्राम में)	फाइबर (ग्राम में)	मिनरल (ग्राम में)	आयरन (ग्राम में)	मिनरल (ग्राम में)
बाजरा	10.6	1.3	2.3	16.9	38
राजी	7.3	3.6	2.7	3.9	344
कंगनी	12.3	8	3.3	2.8	31
प्रोसो	12.5	2.2	1.9	0.8	14
कोदो	8.3	9	2.6	0.5	27
सांवा	7.7	7.6	1.5	9.3	17
बार्नयार्डमिलेट	11.2	10.1	4.4	15.2	11

स्त्रोत : एम.आई.एन.आई., डक्कन डेवलपमेन्ट सोसाइटी, भारत

पद्धति के ऊपर व्यवहारिक रूप से प्रशिक्षित किया गया। सूरन की खेती के बहुत से फायदों को समझने व महसूस करने के बाद धीरे–धीरे किसानों ने इसमें रूचि लेना प्रारम्भ कर दिया।

प्रारम्भ में रायगदा के 50 किसानों ने सूरन की खेती प्रारम्भ की। किसानों ने खेती के कृषि पारिस्थितिकी तरीके का अनुसरण किया। सूरन को लगाने से पहले कन्द को गाय के गोबर, मूत्र एवं ट्राइकोडर्मा के मिश्रण से उपचारित किया गया। कन्द लगाने तथा जड़े निकलने के बाद गड्ढो को हरी पत्तियों एवं सूखे पुआल से ढक दिया गया। यह देखा गया कि मल्चिंग करने से न केवल मृदा नमी संरक्षित हुई और मृदा तापमान नियंत्रित हुआ, वरन् खर–पतवार की वृद्धि भी कम हुई।

सूरन के साथ–साथ किसानों ने कसावा और गंजी की खेती करनी प्रारम्भ कर दी। कसावा की खेती सूखा के दौरान पत्तियों की छाया के नीचे की जा सकती है, उच्च तापमान सहनीय फसल है और निम्न श्रेणी की मृदा में भी अंकुरण अच्छी प्रकार से होता है। इसी प्रकार गंजी अम्लीय स्थितियों को सहने वाली तथा अचानक आने वाली बाढ़ एवं मध्य में पड़ने वाले सूखा को सहकर भी अच्छा उपज दे सकती है।

कसावा कन्द को दिखाती सुकरी माझी

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

अन्तर्फसल एवं मिश्रित खेती को बढ़ावा देना

'अम्मा' संगठन ने किसानों को दलहन एवं मोटे अनाजों के साथ कन्द वाली फसलों की मिश्रित एवं अर्न्तखेती करने हेतु किसानों को प्रोत्साहित किया और इस हेतु उन्होंने किसानों से यह कहा कि अगर फसल खराब होगी तो संगठन उसकी भरपाई करेगा। इससे फसल विविधीकरण को बढ़ावा मिला तथा मृदा उर्वरता को संरक्षित करने में मदद मिली।

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान मोटे अनाजों की पारम्परिक प्रजातियों को पुनर्जीवित करने पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया क्योंकि क्षेत्र में रहने वाले समुदायों के भोजन का यह एक मुख्य हिस्सा था। अम्मा संगठन ने उन किसानों को विशेषकर बढ़ावा दिया जिन्होंने पारम्परिक प्रजातियों को बढ़ाने के लिए उनके बीजों को संरक्षित किया। 5 वर्षों के अन्दर क्षेत्र में कोदो एवं सांवा की खेती फिर से होने लगी। किसान अब विभिन्न प्रकार के मोटे अनाजों जैसे टांगुन, बाजरा, कंगनी, सांवा, प्रोसो, कोदो एवं बार्नयार्ड की मिश्रित खेती बड़ी मात्रा में करने लगे हैं।

मोटे अनाजों के साथ कसावा की खेती कर किसानों ने 0.4 हेक्टेयर खेत में 170 किग्रा मोटे अनाज का उत्पादन किया, जिससे खेती से होने वाली आमदनी में 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कसावा के साथ काले सेम की खेती से 0.4 हेक्टेयर में 140 किग्रा0 सेम की उपज मिली, जिससे आमदनी में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी प्रकार जब कसावा के साथ मोटे अनाज और दलहन दोनों की मिश्रित खेती की गयी तो 0.4 हेक्टेयर खेत से 110 किग्रा0 मोटे अनाज तथा 85 किग्रा दलहन उत्पादित किया गया। परिणामतः अकेले कसावा की तुलना में उपज में 20 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। ये सभी अन्तः फसलें कसावा से पहले काट ली गयी जिससे कसावा की उत्पादकता पर भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा।

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

कसावा चिप्स को धूप में सुखाते हुए

ठीक इसी प्रकार गंजी को मक्का के साथ अन्तः फसल के रूप में लगाने से निश्चित तौर पर कन्द की उपज में वृद्धि हुई, क्योंकि इस प्रणाली में मक्का न केवल अधिक उपज देती है, बल्कि इसकी सूखी पत्तियाँ सड़कर मृदा को जैविक खाद भी उपलब्ध कराती हैं। इसी प्रकार, गंजी के साथ चना की अन्तः खेती करने से बेहतर परिणाम मिलता है। इसका कारण यह है कि चना की फसलें वातावरण से नाइट्रोजन अवशोषित कर मृदा को देती हैं। सूरन की खेती करते समय प्रारम्भिक अवस्था में मूंग, उर्द, चना आदि दलहनी फसलें अन्तः फसल के रूप में उगायी गयीं।

उपरोक्त गतिविधियों के लाभकारी परिणाम के रूप में मृदा स्वास्थ्य का उन्नत होना तथा उत्पादकता में स्थाईत्व उल्लेखनीय हैं। मृदा में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ ही जड़ों तथा पत्तियों के गिरने से जैविक सामग्री की मात्रा भी बढ़ती है। गहरी जड़ों की खेती करने से पोषक तत्व मिट्टी के अन्दर समाहित होते हैं और मृदा की ऊपरी परत ढ़के रहने से मृदा क्षरण भी नहीं होता है जिससे उनमें सूक्ष्म जैविक तत्वों का ह्रास नहीं होता है और तत्वों में गुणवत्तापूर्ण परिवर्तन होने से उत्पादकता बनी रहती है। मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक मोटे अनाजों को बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है और एक निश्चित सीमा तक अम्लीय एवं क्षारीय मृदा, नमी की कमी, उच्च तापमान तथा विभिन्न प्रकार की मिट्टी जैसे भारी हो अथवा बलुई किसी भी प्रकार की मृदा में इनकी खेती की जा सकती है। मोटे अनाजों से खाद्य, पोषण, चारा, फाइबर, स्वास्थ्य एवं परिस्थितिकी कई तरह का लाभ होता है।

> एक महिला किसान सोबिनी मृदुली का कहना है– ''पिछले वर्ष मानसून बहुत देर से आया, जिससे धान की उपज बहुत कम हुई। लेकिन हमारी कन्द एवं दलहनी फसलों ने हमें इस मुश्किल समय से भी उबार लिया। मैंने सूरन, कसावा एवं गंजी के साथ दलहन एवं मोटे अनाजें की मिश्रित खेती की और मुझे 1.5 कुन्तल सूरन, 0.70 कुन्तल कसावा एवं 1 कुन्तल गंजी के साथ पर्याप्त मात्रा में दलहन एवं मोटा अनाज भी मिला। हमारे पास परिवार के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्य भण्डारण सुनिश्चित है इसके बाद भी शेष उपज को बेचकर हमने रू0 24,844/– की आमदनी की है। इसके अतिरिक्त हमने अपने प्रसंस्कृत एवं मूल्य संवर्धित को स्थानीय बाजार में अच्छे दामों पर बेचा। इस तरह की जानकारी एवं आवश्यक तकनीकी सहयोग प्रदान करने के लिए अम्मा संगठन को बहुत–बहुत धन्यवाद।''

मूल्य अभिवृद्धि के माध्यम से कन्द वाली फसलों का विपणन बढ़ाना

कन्द वाली फसलों की खेती से किसानों को बेहतर आय अर्जन कराने के उद्देश्य से अम्मा संगठन ने सूरन, कसावा एवं गंजी के प्रसंस्करण एवं मूल्य अभिवृद्धि पर किसानों को प्रशिक्षण प्रदान किया। परिणामतः अब किसान इन कन्द वाली फसलों से विविध प्रकार के मूल्यवर्धक उत्पाद तैयार कर उसे स्वयं स्थानीय बाजार में बेचकर अच्छा मुनाफा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए– कसावा चिप्स, कसावा पापड़ तैयार कर किसान बेच रहे हैं। इसी प्रकार गंजी की चिप्स और आटा तैयार किया जा रहा है।

प्रभाव जो दिख रहे

पहले किसान सिर्फ एकल खेती करते थे और देर से मानसून आने या वर्षा न होने की स्थिति में फसल का नुकसान हो जाता था जिससे उन्हें जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर के महीनों में खाद्य की कमी होती थी, क्योंकि उस समय उनकी फसलें खेतों में रहती थी। इस अवधि के दौरान, किसानों को पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण वे आम की गुठली, इमली के बीज एवं इसी प्रकार के अन्य बहुत से सामानों का उपयोग करते थे, जिससे बहुत वे जहरीले भोजन का शिकार हो जाते थे लेकिन अब वे कन्द, दलहन एवं मोटे अनाजों की खेती अन्तः एवं मिश्रित खेती पूरे वर्ष करते हैं। इसका विशेषकर महिलाओं एवं बच्चों के उपर विशेष व उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है, क्योंकि अब उन्हें पूरे वर्ष पोषण युक्त खाद्य मिलता है।

क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती करने वाली बहुत से सीमान्त किसानों को कन्द वाली फसलों के प्रसंस्करण एवं मूल्य सवंर्धन से निश्चित तौर पर आजीविका उपलब्ध हुई है। अब किसान अपने मूल्य संवर्धित उत्पादों का बेहतर बाजार भाव पा रहे हैं। समुचित तरीके से प्रसंस्करण एवं मूल्य सवंर्धन करते हुए किसान अब बचे हुए सामानों को लम्बे समय तक भण्डारण करने में सक्षम हैं। इन सुरक्षित खाद्य

सामग्रियों का उपयोग वे खाद्य संकट के दिनों में करते हैं। महिलाओं की मोल–भाव की क्षमता बढ़ी है और घरेलू आय बढ़ाने में उनके योगदान को अब लोग मानने लगे हैं।

जैविक निवेशों का उपयोग करने, दलहनी फसलों तथा मोटे अनाजों की अन्तः खेती करते हुए एकीकृत कीट प्रबन्धन के माध्यम से न केवल मृदा उर्वरता संरक्षित हो रही है, वरन् निष्क्रिय जमीनों को फिर से उर्वर बनाया जा रहा है।

निःसन्देह कन्द, दलहने एवं मोटे अनाज ''जलवायु स्मार्ट फसलें'' हैं, जो विशेषकर उष्ण कटिबन्धीय एवं उपउष्ण कटिबन्धीय देशों के गरीब किसानों की आजीविका एवं पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें न केवल अप्रयुक्त है वरन् इन पर अभी शोध हो रहे हैं। इन अप्रयुक्त फसलों को समुचित व पर्याप्त सहयोग देकर मुख्य फसलों का एक बेहतर विकल्प बनाया जा सकता है जिससे खेतों का लचीलापन सुनिश्चित किया जा सकेगा और इसमें वैज्ञानिकों, शोधार्थी एवं नागर समाज संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

आभार– इस लेख का लिखने के दौरान मिले तकनीकी एवं अन्य मुख्य सहयोग हेतु लेखक भूतपूर्व वरिष्ठ कार्यक्रम एडवाइजर सेवानिवृत्त निदेशक औद्यानिक, भुवनेश्वर उड़ीसा देबेश प्रसाद पाधे का आभार व्यक्त करते हैं।

■

अभिजीत मोहन्ती
अग्रगामी
भुवनेश्वर,
उड़ीसा - भारत
ईमेल : abhijitmohanty10@yahoo.com

सुमानी जोदिया
अध्यक्ष
अम्मा संगठन
काशीपुर, उड़ीसा

Valuing underutilised crops
LEISA INDIA, Vol 18, No.2, June 2016

www.leisaindia.org

A website for learning and sharing experiences on LEISA practices

Main Features

- Space to share your LEISA experience.
- A source for LEISA practices followed by farmers.
- An archive of LEISA India magazines—English edition and regional editions (Kannada, Tamil, Hindi, Telugu, Oriya, Punjabi and Marathi)
- Photos and videos on LEISA practices.
- Interesting cases of people following LEISA practices.

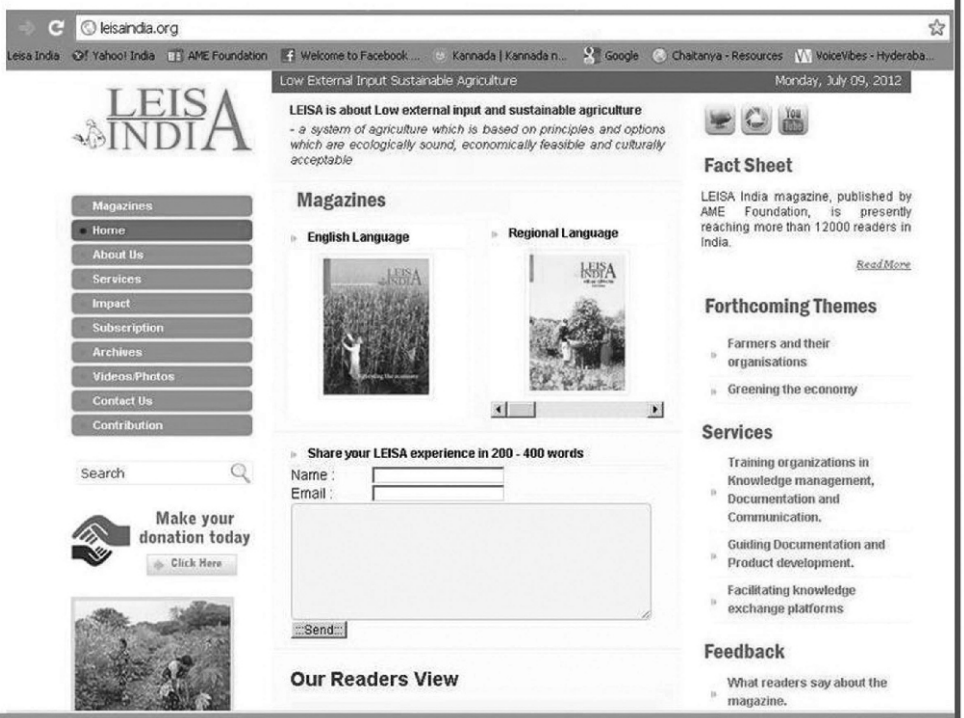

Follow us on Facebook: www.facebook.com/Leisaindiamag
Follow us on Twitter: @LeisaIndia

छत की दीवारों पर रतालू की खेती

भावना घिमिरे, राजीव ढाकाल, रोशन पुदासैनी, रचना देवकोटा एवं पशुपति चौधरी

अपनी बहुत सी पौष्टिक खूबियों के बावजूद रतालू अभी भी उपेक्षित एवं अप्रयुक्त है। रतालू पर राष्ट्रीय भोध एवं प्रसार कार्यक्रमों की अनुपस्थिति में, लाईबर्ड ने नेपाल में चेपांग समुदायों के साथ छत की दीवारों पर रतालू की खेती को प्रोत्साहित करने की अनूठी पहल की है।

तिब्बती–बर्मीज परिवार से सम्बद्ध रखने वाला चेपांग एक पारम्परिक समुदाय है, जो मध्य एवं पश्चिमी नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करता है। चेपांग समुदाय के लोग बहुत हद तक खानाबदोश की जीवन जीते हैं और बहुत बड़े पैमाने पर खाद्य असुरक्षा का सामना करते हैं। वे मुख्यतः ''खेती करो और जलाओ'' तकनीक के माध्यम से ढालूदार जमीन के छोटे–छोटे टुकड़ों पर मक्का एवं मोटे अनाजों की खेती करते हैं। इस समुदाय के अधिकांश लोगों ने हाल के कुछ वर्षों से छत की दीवारों पर रतालू की खेती स्थाई तौर से करना प्रारम्भ कर दिया है, लेकिन ''खेती करो एवं जलाओ'' पद्धति अभी भी अस्तित्व में है।

ऐतिहासिक तौर से, चेपांग लोगों की निर्भरता जंगली रतालू एवं अन्य दूसरे पौधे जैसे चिउरी, कफाल, गिथा आदि फलों को जंगल से इकट्ठा करने के उपर है। चूंकि उन्हें सिर्फ 6 माह ही पर्याप्त मात्रा में भोजन की उपलब्धता हो पाती है। अतः शेष समय में वे मछली मारने व शिकार करने का काम करते हैं। इसके साथ ही भोजन की अनुपलब्धता वाले महीनों में जंगल से भोजन एकत्र करने का भी काम करते हैं।

रतालू चेपांग समुदाय के लिए न सिर्फ खाद्य सुरक्षा के सन्दर्भ मे चेपांग समुदाय के लिए महत्वपूर्ण है, वरन् यह उनकी परम्परा एवं संस्कृति के लिए भी महत्व रखता है। पुराने जमाने से ही रतालू एवं चेपांग समुदाय का आपस में गहरा रिश्ता है। नेपाल के धादिंग जिले में किये गये एक अध्ययन में कहा गया है कि रतालू की 13 में से 10 प्रजातियां इस जिले में पाई जाती हैं, जिनमें से 9 प्रजातियों

बाजार के लिए तैयार उत्पाद

का उपयोग खाने के रूप में किया जाता है और एक का उपयोग साबुन के तौर पर होता है। रतालू का खास उपयोग करने के नाते ही चेपांग के लोगों को रतालू की पहचान, उसका प्रसंस्करण तथा उपभोग के विषय में व्यापक जानकारियां हैं।

कई पौष्टिक लाभ होने के बावजूद रतालू अभी भी उपेक्षित एवं अप्रयुक्त प्रजातियों की श्रेणी में बनी हुई है। राष्ट्रीय स्तर पर रतालू पर कोई भी शोध अथवा प्रसार कार्यक्रम

नेपाल चेपांग एसोसियेशन (एनसीए) की एक रिपोर्ट बताती है कि 71 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। नेपाल की जंगली रतालू विषैली नहीं होती है और उच्च पोषक मूल्यों के कारण इसे ''स्वास्थ्य/कार्यात्मक भोजन'' के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस तरह के समुदायों के लिए विशेषकर उन दिनों में जब पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिलता है, स्टार्च से भरपूर रतालू भोजन और कार्बोहाइड्रेट का मुख्य स्रोत होता है। रतालू की कुछ प्रजातियों में तो आलू एवं गंजी की तुलना में पांच गुना अधिक प्रोटीन होता है। रतालू भोजन में पाये जाने वाले बहुत से खनिजों की पूर्ति भी करता है। रतालू को नूडल्स व ब्रेड के साथ मिश्रित किया जा सकता है, जिससे इसका पोषण मूल्य और भी बढ़ जाता है, जिससे बच्चों में कुपोषण को दूर करने में सहायता मिलती है।

लैटक गाँव में बोरे में रतालू की खेती का प्रदर्शन

बहुत से लोग मुख्यतः हरिबोधनी एकादशी तथा माघ संक्रान्ति के दिन धार्मिक पर्व पर खाने के लिए रतालू की खेती करते हैं। हरिबोधनी एकादशी में, लोगों का यह विश्वास है कि जोते गये खेत के फसल को नहीं खाना चाहिए। इसी प्रकार नेपाली कलेण्डर के अनुसार पौध माह के आखिरी दिन पकाये हुए रतालू को माघ के पहले दिना खाने की परम्परा है। नेपाल के अन्य जातीय समूहों में ये परम्पराएं समान हैं। ये समुदाय रतालू का अचार बनाकर खाते हैं। रतालू का मूल्य संवर्धन करते हुए इससे 'मसायुरा' बनाते हैं जिसे उबालकर, पकाकर या तलकर उपयोग में लाते हैं।

नहीं किया गया है। इस फसल के उपेक्षित होने के कारणों में रोपाई एवं खुदाई के लिए श्रम का संकट, कई फसलों की खेती का अभाव, फल की अवधि कम समय की होना तथा उपयोग के बाद बचे उपज के लिए बाजार का अभाव प्रमुख तौर पर सामने आते हैं। इन सबसे उपर, पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री के न मिलने के कारण लोग पहले की अपेक्षा अब इसकी खेती में कम रूचि रख रहे हैं।

नवाचार

चेपांग लोगों ने अभी कुछ पीढ़ियों पहले ही स्थापित तौर पर खेती करनी प्रारम्भ की है। यहां तक कि आज वे छतों एवं छत की दीवारों को भी खाली नहीं छोड़ते हैं। कुछ छतों पर तो 40 प्रतिशत तक जमीन होती है, जिन पर प्राकृतिक रूप से चारा उगा रहता है। इण्टरनेशनल डेवलपमेण्ट रिसर्च सेण्टर तथा ग्लोबल अफेयर्स कनाडा के वित्तीय सहयोग से लोकल इनीशियेटिव फार बायोडाइवर्सिटी, रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट (एलआई–बीआईआरडी) ने गुएल्फ एवं कनैडियन मेन्नोनाइट विश्वविद्यालय के विद्वानों के साथ साझेदारी कर छतों की बंजर व खाली पड़ी दीवारों तथा अन्य जमीनों का उपयोग खेती के लिए करने हेतु पहल करना प्रारम्भ कर दिया। ये जमीनें ऐसी थीं, जहां पहले अनाज उत्पादन बहुत ही कम किया जाता था।

परियोजना के माध्यम से लोगों को छतों की दीवारों को सहारे ''बोरों में रतालू की खेती'' की सरल तकनीक से परिचित कराया गया। इस तकनीक में बोरों में मिट्टी भरकर उसमें रतालू के पौधों की रोपाई कर उपज लेना आसान हो गया। साथ ही बोरों में रतालू की खेती करने से मृदा क्षरण अथवा दीवार गिरने को कम में भी सहायता मिली। बोरों को छत की दीवारों पर रख दिया जाता है। खुदाई के समय बोरों को काटकर अथवा फाड़कर कंद निकाल लिया जाता है। इस तरीके से किसान रतालू की खेती व्यवसायिक स्तर पर भी कर सकते हैं।

चेपांग लोगों ने यम की खेती के लिए अपने पारम्परिक पद्धति को अपनाया। इसके तहत् उन्होंने छत के किनारों अथवा दीवारों पर एक मीटर गहराई और चौड़ाई के गढ्ढे खोदकर पहले उसमें पर्याप्त मात्रा में देशी खाद डाली और फिर गढ्ढे में रतालू कन्द के सिरे की रोपाई की। किसानों ने पाया कि छत की दीवारों के कोनों की तुलना में किनारों पर रतालू की रोपाई एवं खुदाई करना ज्यादा आसान है। वे सामान्यतः माघ संक्रान्ति से पहले रतालू की खुदाई कर लेते हैं। खौरिया के रूप में प्रचलित वे जमीनें जहां खेती कर जला दी गयी थी, वहां पर भी रतालू की खेती की गयी।

बाजार की संभावना तथा अवसरों के उपर किसानों के बीच जानकारी बढ़ने से रतालू की खेती बढ़ी है। हालांकि किसान हाशिये वाली खेती और छत की जमीन दोनों पर बहुत कम प्रयासों के साथ रतालू की खेती के लिए विभिन्न तरीके अपना रहे हैं।

विपणन

जब यहां का सबसे नजदीकी बाजार मुगलिन था, उस समय इस समुदाय के सिर्फ 25 प्रतिशत लोग ही अपने उत्पादों को बेचने में सक्षम थे। लोगों के अन्दर इस बात को लेकर निश्चितता नहीं थी कि उनके खेत से निकली सभी सब्ज़िया बाजार में बिक ही जायेंगी। जब तक नजदीक के कस्बे फिशलिंग में सब्जी संग्रह केन्द्र नहीं स्थापित हुए तब तक केवल फल जैसे केला ही देश की राजधानी काठमाण्डू, कालीमाटी आदि जगहों को भेजा जाता था। फिशलिंग (मुगलिन से 13 किमी0 दूर) मुगलिन–काठमाण्डू हाइवे के आस–पास बसने वाले बहुत से गांवों का जंक्शन बिन्दु है, जहां अब विभिन्न जिलों के ग्राम विकास समितियों द्वारा उत्पादित सब्ज़ियों का

रतालू लगाने के लिए बोरे की तैयारी

एकत्रीकरण होता है। फिशलिंग के एकत्रीकरण केन्द्र में सब्ज़ियों का भण्डारण होता है और फिर वहां से विभिन्न बड़े–बड़े शहरों मुख्यतः कालीमाटी सब्जी खरीद एवं बिक्री केन्द्र (लगभग 100 किमी0 दूर), नरायनगढ़ (लगभग 50 किमी0), भैरहवा (लगभग 170 किमी0) और पोखरा (लगभग 103 किमी0) में विपणन हेतु भेजा जाता है।

सब्ज़ियों के साथ रतालू भी एक बड़ा उत्पाद है, जिसका विपणन इस श्रृंखला के माध्यम से किया जाता है। चेपांग समुदाय के किसानों सहित आस–पास के ग्राम विकास समितियों के किसान इस अवसर का लाभ उठाते हुए रतालू की खेती करने और उसे एकत्रित करने का काम कर रहे हैं। फिशलिंग में रतालू बेचने वाले किसानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

गोरखा में भूल्मीचौक ग्राम विकास समिति की निवासिनी एक महिला किसान प्रति पौध से औसतन 3 किग्रा0 रतालू ले रही है। पिछले दो वर्षों से इसने रतालू का उत्पादन एवं विपणन बड़े पैमाने पर प्रारम्भ कर दिया है। इनका कहना है कि जब हम रतालू की खेती में 1400 नेपाली रूपया लगाते हैं तो एक कुन्तल रतालू का उत्पादन होता है और हम 50000 से 70000 नेपाली रूपया कमाते हैं। वह महिला किसान बड़ी प्रसन्नता से बताती है कि उसके शिक्षित बेटों एवं पुत्रवधू सहित परिवार के सभी सदस्य रतालू की खेती में उसकी मदद करते हैं।

दूर–दूर तक विस्तार

वास्तव में बोरे में रतालू की खेती की तकनीक का परीक्षण धादिंग ग्राम विकास समिति के जोगीमारा के लैटक एवं अहल तथा कास्की के मझथाना के पाटले में किया गया। जोगीमारा, भूल्मीचौक एवं कौले के अधिकांश चेपांग परिवारों के बीच रिश्तेदारियां होने के कारण इस तकनीक का हस्तान्तरण आसानी से जोगीमारा से दूसरे स्थानों तक हुआ और इसे गैर चेपांग समुदायों ने भी अपनाया। रतालू की खेती करने के इस नवीन तरीके ने बहुत से लोगों को रतालू की खेती करने हेतु उत्प्रेरित किया और आस–पास के बहुत से गाँवों के किसान इसे अपना रहे हैं।

इसके साथ ही इस नवीन पद्धति से जोगीमारा, गोरखा, चितवन एवं आस–पास के अन्य क्षेत्रों में तिरछी ढलान वाले खेतों से भूस्खलन को कम करने में भी व्यापक सहायता मिली है। परिणामतः खेती के ऊपर जलवायु परिवर्तन के पड़ने वाले प्रभाव एवं उनसे उत्पन्न जोखिम कम हुए हैं और खेती प्रणाली में स्थाईत्व आया है। अंत में, यह कहना भी महत्वपूर्ण होगा कि इससे चेपांग समुदायों की खाद्य सुरक्षा एवं स्थाई आजीविका सुनिश्चित हुई है और अब वर्ष के कठिन दिनों में भी उन्हें व उनके परिवार को पर्याप्त मात्रा में भोजन व पोषण मिलने लगा है।

सन्दर्भ

1. भण्डारी, एम.आर., टकानोरी कसाई एवं जुन कवाबाटा, जंगली रतालू का पोषण मूल्यांकन (डिस्कोरिया एसपीपी) नेपाल के कन्द, 2003, फूड केमेस्ट्री, 82 (4), 619–623 पेज

2. सी.बी.एस. 2011, नेपाल का जनसंख्या मोनोग्राफ, काठमाण्डू, नेपाल

3. लिम्बू, पी. एव के. थापा, चेपांग खाद्य संस्कृति : विलुप्त एवं उपेक्षित जंगली पौध प्रजातियों का योगदान, 2011, लाईबर्ड, पोखरा, नेपाल

4. शर्मा, एल.एन. एवं आर. बस्टकोटी, मध्य नेपाल के धादिंग जिले में चेपांग समुदायों में खाद्य मूल्यों पर जोर देने के साथ डिस्कोरिया एल. की लोकवानस्पति, 2009, बोटोनिका ओरिएण्टल्स – जर्नल आफ प्लाण्ट साइन्सेज, 6:12–17 पेज

5. थापा, आर.बी., नेपाल के जंगलों से वन आधारित परिवारों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा पर एक अध्ययन रिपोर्ट, 2013, पुनर्जागरण समाज, नेपाल, बल्ककोट, भक्तापुर,

■

भावना घिमिरे
परियोजना अधिकारी
लाईबर्ड
गैरापटन, पोखरा, कास्की, गण्डकी, नेपाल
वेबसाईट : www.libird.org
ईमेल : bhawana.ghimire@libird.org

Valuing underutilized crops
LEISA INDIA, Vol 18, No.2, June 2016

जल-जमाव क्षेत्र में उच्च लो टनल पाली हाउस में नर्सरी से आय अर्जन

अजय कुमार सिंह

गोरखपुर के जंगल खिरवनिया में रहने वाले 47 वर्षीय श्री कम्बोज कुमार के पास 2 एकड़ खेती है। कक्षा दसवीं तक की शिक्षा प्राप्त कम्बोज अपने 6 सदस्यीय परिवार का पेट पालने के लिए खेती करते हैं। साथ ही खेती से प्राप्त उपज को बेचने हेतु सब्ज़ी की दुकान भी लगाते हैं। लो टनल पाली हाउस द्वारा नर्सरी उगाने की विधि काफी पुरानी है। वैसे तो किसान बिना मौसम के सब्ज़ियों की नर्सरी तैयार करते रहे हैं, परन्तु महेवा के किसान श्री कम्बोज कुमार ने उच्च लो टनल पाली हाउस का उपयोग कर सब्ज़ियों की नर्सरी उस क्षेत्र में तैयार की, जहां जल–जमाव के कारण किसान सिर्फ एक फसल रबी ही ले पाते थे। बहुत बार तो खेत की नमी सूखने में रबी की बुवाई का सीजन भी निकल जाता था और लेट बुवाई करने के कारण उपज प्रभावित होती थी। अतः इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र के अधिकांश किसान सब्ज़ियों की खेती करते थे और इस हेतु पौध की खरीद बाजार से करते थे। गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप के सम्पर्क में आने पर कम्बोज ने उच्च लो टनल पाली हाउस तकनीक के बारे में जानकारी प्राप्त की और अपने खेत के उच्च स्थानों का चयन करके इस विधि से नर्सरी उगाने में सक्षम रहे। कम्बोज के अनुसार – पहले उन्हें बाजार से सब्ज़ियों के पौध खरीदने पड़ते थे, जिसकी गुणवत्ता भी बहुत विश्वसनीय नहीं होती

थी और समय से पौध उपलब्ध भी नहीं हो पाते थे। अतः हमेशा ही सब्ज़ियों के पौध लगाने में देरी हो जाती थी। बिलम्ब से पौध रोपने में औसतन 30 डिसीमल में 8000.00 रूपये का नकुसान होता था, परन्तु अब उच्च लो टनल पाली हाउस लगाकर उसी 30 डिसीमल में कुल 6000.00 रू0 की सब्ज़ियां प्राप्त हुई। प्राप्त आमदनी में से उच्च लो टनल पाली हाउस की कुल लागत रू0 2500.00 निकालने के बाद भी शुद्ध लाभ रू0 3500.00 हुआ। आज कम्बोज अपने खेत में गोभी, पालक, भिण्डी, लौकी, बोड़ा, मेथी, मटर, मूली, नेनुआ, तरोई, धनिया, गेहूँ, सरसों एवं आलू की सब्ज़ियों की खेती मुख्य फसल के तौर पर करते हुए खेती को लाभप्रद बना रहे हैं।

आज कम्बोज इस प्रकार की नर्सरी द्वारा कुल 10 प्रकार की सब्ज़ियों की नर्सरी लगा अपने खेत में तो सब्ज़ियों के पौधों की रोपाई समय से कर ही रहे हैं साथ ही साथ आस पास के अन्य किसानों को पौधे बेच भी रहे हैं। कम्बोज आम किसानों को इस विधि से खेती करने के लिए प्रेरित भी कर रहे हैं। वर्तमान में इस तरह की तकनीक को 10 किसानों द्वारा अपनाया जा रहा है।

कम्बोज द्वारा किये जा रहे इस प्रयास को विस्तार देने के क्रम में इनका जुड़ाव दूरदर्शन एवं समाचार पत्रों से सघन रूप से हुआ है और ग्राम स्तर पर तथा अन्य स्थानों पर भी यह अपने अनुभवों को बताने हेतु संदर्भ व्यक्ति के तौर पर जाते हैं।

■

अजय कुमार सिंह
परियोजना समन्वयक
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं०- 60, गोरखपुर-273001
ईमेल : mahewa@geagindia.org